42

भारतीय संगीत में थाट की संकल्पना

तर्जनी चंद्रकांत हिराणी
शोधछात्रा,

डॉ. अश्विनीकुमार सिंघ
मार्गदर्शक,
डीपार्टमेन्ट ऑफ इन्डियन क्लासिकल म्युकि (गायन),
फॅकल्टीफ ऑफ परफोर्मिंग आर्ट्स ध महाराजा सयाजीराव युनिवर्सिटी ऑफ बड़ौदा, बड़ौदा

डॉ. भारती राठोड
अनुरुपी लेखक, प्रिन्सीपाल,
श्री अर्जुनलाल हिराणी परफोर्मिंग आर्ट्स कॉलेज, राजकोट

****

शोधसार :

उत्तरभारतीय शास्त्रीय संगीत में थाट का एक विशिष्ट महत्व हैं। थाट की उत्पत्ति ७२ थाटों की संकल्पना के आधार पर उत्तरभारतीय १० थाटों की रचना के आधारतत्वों को इस शोधपत्र में समाहित करने का विनम्र प्रयास शोधार्थी द्वारा किया गया हैं। तद्उपरांत थाट के विषय में प्रमुख संगीतज्ञों के विचार और थाट की उपयोगिता के विषय में इस शोधपत्र में विषयोचित प्रस्तुति की गई हैं।

शोधपत्र :

उत्तरभारतीय शास्त्रीय संगीत अपनी विशिष्टता के कारणविश्व संगीत में सर्वोत्तमस्थान रखता हैं। विश्व संगीत के अवधारणा में भारतीय संगीत श्रेष्ठ संगीत की भूमिका में विद्यामान है। भारतीय संगीत मानव गुणों के साथ जुड़ा हुआ संगीत हैं। भारतीय संगीत का मूलतत्व नाद हैं। नाद के आधार पर भारतीय संगीत की पृष्ठभूमि तैयार हुई हैं। भारतीय संगीत के विद्वानोंने स्वरों के आधार पर रागों की उत्पत्ति स्पष्ट की हैं। रागों के बंधारण के साथ उनके प्रमुख तत्वोंमें थाट का एक विशिष्ट महत्व हमारे संगीतज्ञोंने समाया हैं।

"मेल:स्वरसमूह: स्याद्रागव्यंजनशक्तिमान्।"

"मेल" (ठाठ) स्वरों के उससमूह को कहते है जिससे राग उत्पन्न हो सके। नादसे स्वर, स्वरोंसे सप्तक और सप्तक से "ठाठ" तैयार होते हैं। थाट अथवा ठाठ की उत्पत्ति सप्तक के १२ स्वरोंसे होती है। सप्तक का अर्थ सात स्वरों का समुदाय हैं। सप्तक को ग्रंथो में मेलसंस्थिति आदिनामों से पुकारा गया है। सातस्वरों को क्रमानुसार उच्चारण को सप्तक कहते हैं। एक सप्तक में शुद्ध तथाविकृत कुलमिलाकर १२ स्वर होते हैं। उसके प्रत्येक सप्त-स्वर क्रम को लेकर ठाठ निर्मित होते है।१ "सातस्वरो: के क्रमिक समूह, जो राग उत्पन्न करने की शक्ति रखता हो उसको थाट या मेल कहा जाता है। मेल या थाट एक-दूसरे के पर्यायवाची शब्द हैं, क्योंकि प्रमाणिक संगीत ग्रंथों में वर्गीकरण को इसश्रेणी के लिए मेल शब्द का प्रयोग किया गया है।"२ संगीत के इतिहाससे पता लगता है कि, संगीत में समय-समय पर अलग तरह की शैलियों का प्रचार हुआ और उनको भिन्न-भिन्न से अलग वर्गीकरण के अंतर्गत बाँटा गया हैं। मेल वर्गीकरण के अंतर्गत थाटों की संख्या के विषय मतभेद होने के कारण यह पद्धति धीरे धीरे समाप्त हो गई। १७वीं सदी में दक्षिण के निवासी पं. वैंकटमुखीने "चतुर्दण्डि प्रकाशिका" नामक ग्रंथ में गणित द्वारा यह सिद्ध किया की एक सप्तक से अधिक से अधिक ७२ मेल या थाट बन सकते हैं। श्रीतीर्थराम आज़ादजीने अपनी "कत्थक ज्ञानेश्वरी" पुस्तक में ठाठ शब्द के लिए अपने मत को सामने रखते हुए कहाहै कि, "नृत्य में ठाठ" नवाब वाजिदअली शाह के दरबार की देन हैं। उनका यह भी मानना है कि, इस शब्द का जन्म "मुगलकाल" में हुआ होगा। नवाबों की राजसी "ठाठ-बाट" से प्रेरित होकर "ठाठ" शब्दों की उत्पत्ति प्रतीत होती हैं। यह विचित्र बात है कि ठाठ शब्द न तो संस्कृत का है और न अरबी-फारसी का, मगर इससेभी अधिक विचित्र बात यह है कि इसका संगीत और शास्त्रीय नृत्य में इतना गहरा संबंध जुड़ गया है कि संगीत और नृत्य के समस्त आचार्य इस शब्द का निरंतर प्रयोग करते हैं। इतना तो सत्य है कि यह शब्दमूल नहीं हैं, क्योंकि इसके कई रुप प्रचलित है जैसे कि ठाठ, थाट, ठाट..... यदि यह शास्त्र का मूल शब्द होता हो लय, मध्य, बिलंबित, द्रुत आदि शब्दों की भाँति इसकाभी एक निश्चित रुप प्रचलित होता। ठाठ शब्द संस्कृत में "सौष्ठव" शब्द का प्रयोग संगीत में आदिकाल से प्रचलित है। भरतमुनि कृत "नाट्यशास्त्र" में "सौष्ठव" शब्द का वर्णन विस्तार से किया गया है। गायन के लय-तालसमन्वित

लघु अंग संचालन की प्रारंभिक क्रिया को "सौष्ठव" कहते है। भाषाविज्ञान के नियम अनुसार "सौष्ठव" शब्द का कालान्तर में रुप बदला। उसका प्रत्यय पीछे से हटा और उसके स्थान पर दूसरा "ठ" जुड़ गया। साथ ही प्रारंभ के दोनों "स" तथा "औ" की मात्रा हटे और उनका लोप होने पर "ठ" अप्रत्ययवाची बनकर "ठाठ" शब्द बन गया। जैसे की स्वरसे "सूर", कृष्णसे "किशन", नृत्यसे "निरत" आदि। किन्तु शब्द की मूलध्वनि सुरिक्षत रहती हैं। "सौष्ठव" की बलवान ध्वनि "ठ" है। वह बाद में भी जीवित रही और दुहरी हो गई। "सौष्ठव" शब्दपं. सारंगदेव के समय तक प्रचलित था। "संगीत रत्नाकर" में उसका प्रयोग नृत्य के अनुलक्ष में किया। अत: यह स्पष्ट रुपसे कहा जा सकता है कि "ठाठ" का मूल शब्द "सौष्ठव" है और इस शब्द की परंपरा "नाट्यशास्त्र" की रचनासे पूर्व की है। रागों के, जो आज प्रचलित है, वर्गीकरण के लिए पं. भातखंडेजी ने केवल दस ठाठ अपनाए; जिनके अंतगृत विभिन्न राग रखे गए। ठाठ का उद्देश्य राग के शुद्ध और विकृत स्वर बताना मात्र है। एक ठाठ के गठन के लिए सप्तक के सातोंस्वरों का होना जरुरी है, अत: यह आवश्यक है कि, ठाठ संपूर्ण हो, इसीलिए ठाठ-निर्मित है लिए केवल आरोह पर्याप्त है। इस तरह अगर वर्षो में आए हुए सांगीतिक परिवर्तनो को यदि बताना चाहे तो संगीत में अनुशासन के आने के पश्चात् सर्वप्रथम : (१) ग्राम-मूर्च्छना -जाति, फिर, (२) राग-रागिनियाँ और अंत में जो अब तक कायम है। (३) मेल- राग वर्गीकरण / ठाठ राग वर्गीकरण है। १५वीं शताब्दी के अंतिम कालमें "राग-तरंगिणी" के लेखक लोचन कविने रागों के वर्गीकरण की परंपरागत "ग्राम और मूर्च्छना प्रणाली" का परिमार्जन करके मेल अथवा टाट को सामने रखा।३ लोचन कवि के लेखानुसार "ठाठ" जब आया उस समय तक सोलह हजार राग थे, जिन्हें गोपियाँ कृष्ण के सामने गाया करती थी, किन्तु इनमें से ३६ राग प्रसिद्ध है। उन्होंने इन सब बखेड़ो (समस्याओं) को समाप्त करके बारह ठाठ या मेल इस प्रकार कायम किए:

(१)भैरवी
(२) तोड़ी
(३) गौरी
(४) कर्णाट
(५) केदार
(६) ईमन
(७) सारंग
(८) मेघ
(९) धनाश्री
(१०) पूर्वी
(११) मुखारी
(१२) दीपक

लोचन के बाद बहुत समय तक मेल या ठाठ के बारेमें कोई विशेष प्रगति नहीं हुई। ई. १६५५ में लगभग श्रीहदयनारयाण ने लोचन के उन ठाठों के वर्गीकरण की पुष्टी करते हुए इस प्रकार व्याख्या की :-

१. भैरवी :-शुद्ध स्वरसांशन्यासा च संपूर्णषड्जादिभैरवीभवेत्।
२.कर्नाट :-कर्नाटस्त्रयसंपूर्णा:षड्जादि:परिकीर्तित:।
३.मुखाति:- कोमलधैवत-ध कोमला मुखारी स्यात्पूर्णधादिक मूर्च्छना।
४. तोड़ी :- कोमलर्षभधैवतो तीव्रतरगांधारनिषादौ च।
कोमलर्षमधापूर्णा गांशा तोड़ीनिरुप्यते।
५. केदार :- गांधार औरनिषाद
६. यमन :- तीव्रतर गांधार, धैवतऔरनिषाद।
७. मेघ :- कोमनिशाद, कोमल गंधार
८. दीपक:- तीव्रतम गांधार, मध्यम औरनिषाद।
हदयराम गस्यतीव्रतमत्वेऽथतथातीव्रतमौमनी।
इहैवोत्प्रेक्षितापूर्णाहदयाधारिमोच्यते।।
९. गौरी
(१०) सारंग
(११) पूर्वी
(१२) धनाश्री

१७वीं शताब्दी में ठाठों के अन्तर्गत रागों का वर्गीकरण प्रचारमें आ गया था, जो उस समय के प्रसिद्ध ग्रंथ "संगीत पारिजात" और "राग विबोध" सेस्पष्टहै।इसी कालमें श्रीनिवासने मेल की परिभाषा करते हुए बताया कि राग की उत्पत्ति ठाठसे होती है। १७वीं शताब्दी के अन्त तक ठाठों की संख्यामें विद्वानों का विशेष मतभेद रहा। जैसे कि - "राग विबोध" के लेखक नेठाठों की संख्या तेईस "स्वरमेल-कलानिधि" के लेखक ने बीस तथा "चतुर्दन्डिप्रकाशिका" के लेखकने उन्नीस बताई है। दक्षिणी संगीत पद्धति के विद्वान लेखक पं. वैंकटमुखी ने ठाठों की संख्यानिश्चित करने के लिए गणित का सहारा किया और पूर्णरुपसे हिसाब लगाकर ठाठों की कुलनिश्चित संख्या बहत्तर (७२) बताई। इसके बारे में अपने द्रढ़विश्वास के साथ उन्होंने कहा कि इस संख्यामें संगीत के जनक भगवान शंकरभी घटा-बढ़ी नहीं कर सकते। ७२ वैंकटमुखीने १९ ठाठ काम चलाऊ चुन लिए।४ वैंकटमुखी की इस ठाठ संख्या को दक्षिणी संगीतज्ञो ने तो अपनाया किन्तु

उत्तरविद्वानों पर उसका विशेष प्रभाव नहि पड़ा। ... उत्तरभारतीय संगीतज्ञों ने कुलनिर्धारित संख्या ७२ गल मानी। किन्तु उत्तरी पद्धति के लिए अनुकूल न होने ... विष्णुनारायण भातखंडेने वह ७२ ठाटोंमें केवल १० ठाठ चुनकर समस्त प्रचलित रागों का वर्गीकरण किया। जिसे उत्तरभारतीय संगीत विद्यार्थीयोंने अपनाकर राग-रागिनी की प्राचीन पद्धतिसे अपना पीछा छुड़ाया। इसप्रकार यह ठाठ पद्धति चक्कर काटती हुई श्री भातखंडे के समय में आकर वैधानिक रुपसे स्थिर हो गई। हिन्दुस्तानी संगीत पद्धति में पं. व्यंकटमुखी के ७२ थाट में से केवल १० थाट के आधार पर राग गाया व बजाया जाता है। उन सबका वर्गीकरण इन्हीं १० थाटोंमें किया गया हैं। हिन्दुस्तानी संगीत पद्धतिमें राग की रंजकता के गुण को प्राधान्य दिया गया हैं। इससे उत्तरभारतीय शास्त्रीय संगीत को नया रुप मिला। पं. भातखंडेजी द्वारा तैयार किये गये १० जनक मेल हैं। आधुनिक युग में १० थाटों का स्वीकार किया गया हैं। दक्षिण भारतीय संगीत में इसथाट पद्धति का स्वीकार अभी तक नहि किया। पं. विष्णुनारायण भातखंडेजी सुचित जनक मेल एवं जन्य रागों के वर्गीकरण अनुसार थाटोंसे उत्पन्न हुए रागों से कुछ राग वर्तमान युग में प्रचलित है, जब की कुछ अप्रचलित है। अत:उसमें दोनों तरह के रागो का समावेश होता है। पं. भातखेडेजी द्वारा तैयार किया गया जनक मेल और जन्य रागों का वर्गीकरण:

यमन, बिलावलऔर खमाजी; भैरव, पूरवि, मारव, काफ़ी।
आसा, भैरवि, तोड़ी, बखाने; दशमितठाठ "चतुर" गुनि माने।।५

थाट के नियम६

१. थाट हंमेशा सम्पूर्ण होना चाहिए यदि यह आप ही सम्पूर्ण नहीं होगा अर्थात् उस स्वरसमूहमें ७ स्वरही नहीं प्रयोग किये जाएंगे तो सम्पूर्णजाति के रागों को उसके अंतर्गत कैसे माना जा सकता हैं।

२. थाटमें सातस्वरों को क्रमानुसार होना चाहिए जैसे सा के बाद रेऔर रे के बाद ग इत्यादि।

३. थाटमें केवल आरोह ही आवश्यक है, आरोह और अवरोह स्वरजाति आदि रुपमें कोई अंतर नहीं आता।

४. थाट का गाया-बजाया नहीं जाता इसलिए इसमें रंजकता का होना आवश्यक नहीं।

५. थाटमें एक स्वर के दोरुप एक साथ (शुद्ध और विकृत) नहीं हो सकते क्योंकि ऐसा करने से किसी और स्वर को वर्जित करना पड़ेगा, जोकि थाट के नियम के विरुद्ध है। किन्तु दक्षिणी पद्धतिमें ऐसा कर लिया जाता है। एक स्वर के दोरुप एक साथ प्रयोग करने के साथ ही उनका थाट सम्पूर्ण रहता है क्योंकि उन्होंने एक स्वर के दो या दो से ज्यादा नाम दिए हैं। उदाहरण के लिए अगर किसी थाट में दोनों ऋषभ अर्थात् शुद्ध के या चतुश्रुतिक रे प्रयोग किए जाएंगे तो पहले रे ...भ ही रहेगा और दूसरो को शुद्ध गंधार कहा जाएगा। ...कार राग की दृष्टिमें हो जाता है परन्तु असलमें नहीं होता ... के नाम बदलनेसे स्वर-स्थान नही बदलते।

६. थाट के नाम उसके अंतर्गतमाने गए किसी प्रसिद्ध राग के नाम पर रखा गया है, जैसे-निरे ग म प ध निसां ऐसे स्वरसमूह को कल्याण थाट कहा गया है क्योंकि कल्याणमें तीव्र मध्यम का प्रयोग किया जाता है। इसीप्रकारऔर रागों के नाम जिनकेस्वर समूह थाट के स्वरसमूहों के अनुसार थे, अर्थात् विशेष विशेषताएं थीं, उन्हें उन रागों का नाम दिया गया हैं। जैसे - खमाज, काफी, भैरव, भैरवी आदि। जिन रागों के नाम के आधार पर थाट का नामकरण हुआ, उनको आश्रय राग कहा गया। थाटों की संख्या कुल १० मानी गई है।

संदर्भ

१. राजन, रेजु / हिन्दुस्तानी संगीत में राग-लक्षण/ पृ.८८

२. कौर, भगवंत / परंपरागत हिन्दुस्तानी सैद्धांतिक संगीत / पृ. ९०

३. वसंत / संगीत विशारद / पृ. २०

४. निगम, वी. एस. / संगीत कौमुदीनी भाग-२ / पृ. १३

५. निगम, वी. एस. / संगीत कौमुदीनी भाग-२ / पृ,. १७, ३२

६. भातखंडेजी, वी. एन. / संगीत पध्धतिओं का तुलनात्मक अध्ययन / पृ. २१

संदर्भग्रंथ सूचि :

१. वसंत / संगीत विशारद / संगीत कार्यालय हाथरस प्रकाशन / बत्तीसवां संस्करण /ISBN ८१-८५५७-००-१

२. सिंह, ललितकिशोर / ध्वनिऔर संगीत / भारतीय ज्ञानपीठ / द्वितिय संस्करण१९६२/ काशी

३. चौधरी, सुभाषरानी / संगीत के प्रमुख शास्त्रीयसिद्धांत / एडिशन- २००८ / ISBN ८१७३ ९१५२७ ७

४. राजन, रेणु / हिन्दुस्तानी संगीत में राग-लक्षण / एडिशन-१९९६ / ISBN ८१७४८७०६५२

५. संगीत कार्यालय / एडिशन-१जनवरी२०१५ / ASIN : B07DSBRK8C

६. कौर, भगवंत / परंपरागत हिन्दुस्तानी सैद्धांतिक संगीत

७. निगम, वी. एस. / संगीत कौमुदीनी भाग-२ / सीटी नप्रेस / लखनौ

८. भातखंडेजी, वी. एन. / संगीत पदधतिओं का तुलनात्मक अध्ययन

36

मारवा थाट एवं राग एक पारंपारिक अध्ययन

तर्जनी चंद्रकांत हिराणी
शोधछात्रा

डॉ. अश्विनीकुमार सिंह
मार्गदर्शक,
डीपार्टमेन्ट ऑफ इन्डियन क्लासिकल म्युकि (गायन)
फॅकल्टीफ ऑफ परफोर्मिंग आर्ट्स ध महाराजा सयाजी राव युनिवर्सिटी ऑफ बड़ौदा, बड़ौदा

डॉ. भारती राठोड
अनुरुपी लेखक, प्रिन्सीपाल,
श्री अर्जुनलाल हिराणी परफोर्मिंग आर्ट्स कॉलेज, राजकोट

शोधसार :

उत्तर भारतीय शास्त्रीय संगीत में थाटो का एक विशिष्ट महत्व रहा हैं। थाटों के विषय में अनेक मतमांतर के साथ नवीन थाट रचनाओं का औचित्य प्राप्त होता है। उत्तर भारतीय संगीत में मुख्य दस थाट प्रचलन में हैं। वह थाटों में से मारवा थाट का एक पारंपारिक अध्ययन तथा मारवा राग का पारंपारिक आधार तत्वों को इस शोधपत्र में समाहित करने का विनम्र प्रयास शोधार्थी द्वारा किया गया हैं। तद्दउपरांत मारवा थाट के विषय में प्रमुख संगीतज्ञों के विचार औ र वह थाट की उपयोगिता के विषय में इस शोधपत्र में विषयोचित प्रस्तुति की गई हैं।

शोधपत्र :

उत्तर भारतीय शास्त्रीय संगीत अपनी विशिष्टता के कारण विश्व संगीत में सर्वोत्तम स्थान रखना हैं। विश्व संगीत की अवधारणा में भारतीय संगीत श्रेष्ठ संगीत की भूमिका में विद्यामान हैं। भारतीय शास्त्रीय संगीत में मारवा थाट का स्थान, मारवा थाट की उत्पत्ति और विकास के साथ मारवा थाट से मारवा राग की उत्पत्ति स्पष्ट की हैं। राग के बंधारण के साथ राग थी थाट से उत्पत्ति स्पष्ट की हैं। साथ ही उनके प्रमुख तत्वों का विशिष्ट महत्व हमारे संगीतज्ञोंने समजाया हैं।

पं. भातखंडेजीने विकृत "ऋषभ" तथा "मध्यम" वाले थाट को मारवा के नाम से पुकारा। क्योंकि उनके मतानुसार मारवा राग मालव या मारव राग ही का परिवर्तित रुप है जो एक समय का प्रख्यात राग था। कुछ प्राचीन संगीतज्ञ ऐसे भी मिलते है जिसके मतानुसार मारवा श्री राग की रागिनी थी और इस प्रकार यह भी प्राचीन राग था, जो सरलता से जनक थाट की कोटि में ही रखा जा सकता है। मारवा को जनक थाट की कोटि में रखने में दो मुख्य आपत्तियाँ हैं : (१) यह एक संपूर्ण राग नहीं हैं। (२) यह उतना प्रख्यात राग भी नहीं हैं, जितना पूर्वकाल में मालव था। वास्तव में एक थाट - राग में आरोह तथा अवरोह सरल और सीधे होने चाहिए और इस द्रष्टिकोण से यह ठीक उतरता हैं। संगीर रत्नाकर में मालव या मारव नाम का कोई राग नहीं पाया जाता। यद्यपि उस ग्रंथ में इस प्रकार के कुछ अन्य राग मालवकौशिक, मालववेसरो, मालवश्री तथा मालव-पंचम मिलते हैं। इस प्रकार यह पता चलता है कि १२वीं शताब्दी में "मालव" नामक कोई प्रमुख राग कोई व्यवहार में नहीं था, बल्की कोई एक राग था जो पूर्ण रुप से प्रचार में था "मालवा"। जो एक प्रचलित भाषा राग था तथा इसकी उत्पत्ति टक्ककैशिक से थी। "संगीत रत्नाकर" के अनुसार टक्ककैशिक उस जाति का राग का जिसमें पंचम की अपेक्षा धैवत का बाहुल्य था और "म ध" में संवाद था। मालव में भी यह विशेषताएँ विद्यमान थी, परंतु इसके आरोह और अवरोह दोनों में पंचम का प्रयोग होता था। बाद के संगीतशास्त्रों की खोज करने पर भी उस समय के मालव मेम समान विशेषताएँ द्रष्टिगोचर होती है। इस प्रकार इस निष्कर्ष पर आते हैं कि मालव प्राचीन मारवा का परिवर्तित रुप था। इन संगीतशास्त्रों से यह भी ज्ञात होता है कि उस समय का मालव वर्तमान समय के भैरव थाट का था, जिसमें "रे ध" विकृत है तथा उसकी मूर्च्छना "सा रे ग म प" आदि इस प्रकार थी, किन्तु इस काल तक हिन्दुस्तानी संगीत में अप्रचलित होने पर भी "शुद्ध मालव" का रुप अस्पष्ट नहीं था।१ १६ वीं शताब्दी से पूर्व जो राग प्रचलन में था वह मालवगौड़ था - जिसे ग्वालियर के राजा मान के समय मालव में परिवर्तित किया गया। जैसा की पुंडरिक विट्ठल (इ. १५५०) के लेखों से स्पष्ट हैं, उन्होंने मालव को मालवगौड़ में मिला दिया। इस प्रकार हम इस निष्कर्ष पर आते है कि, राग मालव भारतीय संगीत में १६वीं शताब्दी से पूर्व प्रचलन में नहीं था। यद्यपि कर्णाटक और बंगाल में वह १२वीं

शताब्दी से ही एक स्वतंत्र राग के रुप में प्रचलित था। इस समय मालवगौड़ की मूर्च्छना थी "ग म ध नि" जैसे की वर्तमान में भैरव थाट में है और वह मालव में भी प्रयोग में आई। वास्तव में कर्णाटक तथा बंगाल में १२वीं शताब्दी में मालव राग था, जिसका उल्लेख जयदेव के "गीत गोविंद" में मिलता हैं। १४वीं शताब्दी में इस राग की उत्पत्ति के वास्तविक स्रोत मिलते है। श्री सिंहभुपाल ने रागों की ालोचना करते हुए एक स्थान पर लिखा हैं कि तुरुष्क या तुरुष्कगौड़ राग जिसका उल्लेख संगीत रत्नाकर में भी मिलता हैं। उनके समय में मालवगौड़ के नाम से प्रख्यात था और संभवत: तुरुष्क ही मूल राग था, जो की मालवगौड़ में रुपांतरित हो गया। यह राग तुरुष्क भी विदेशी राग था और संभवत: मध्यम-पूर्व के प्रवासीओं से प्राप्त हुआ। इस प्रकार १६वीं सदी में प्रचलित मालव राग जिसका रुप पुंडरिक के समय से "सा ग म ध नि" था तथा जो वर्तमान भैरव थाट के अंतर्गत आता है, तुरुष्क उत्पन्न मालवगौड़ को हमारे मालवा में मिश्रण करने से उत्पन्न हुआ हैं। संभव है कि किसी चतुर संगीतज्ञने प्राचीन नाम के मोह में मालव को मालवा का नाम दे दिया और इस प्रकार मारवा प्रचलन में आया, परंतु विकृत "रे म" का प्रयोग इसमें कब से होने लगा। १७वीं शताब्दी के अंत तक विकृत "रे ध" का प्रयोग मिलता हैं। इस आधार पर यदि मारवा में प्रयुक्त विकृत मध्यम का प्रयोग १८वीं शताब्दी का माने तो उन संगीतज्ञों की विचारधारा को ठेंस पहुँचेगी जो मारवा में विकृत "रे म" का प्रयोग बैजु, गोपाल और तानसेन के समय से मानते है और यदि हम कहें कि प्राचीन - मूर्च्छना पद्धति से इस प्रकार की उत्पत्ति हुई तो यह कथन भी सत्य प्रमाणित नहीं होगा। क्योंकि किसी भी मूर्च्छना में विकृत "ऋषभ" और "मध्यम" प्रमुख स्वर नहीं हो सकते।२ प्राचीन संगीतशास्त्री १६८ प्रकार की विभिन्न मूर्च्छनाओ से रागों का निर्माण किया करते थे। जिनकी उत्पत्ति और प्रकार चार आधारों पर निर्भर करते है। (१) शुद्ध स्वर (२) अंतर (३) काकली तथा (४) अंतर काकली का संमिश्रण । अकेले वैंकटमुखीने गणित के आधार पर इस थाट या मेल का निर्माण किया और इसे गमनश्रम नाम दिया परंतु यह सब कर्णाटक संगीत में था। जब कि हमारा संबंध केवल हिन्दुस्तानी संगीत से हैं। यह हमें फिर अमीर खुसरो तथा उनके अनुयायीओं पर द्रष्टीपात करना होगा। वही ऐसे व्यक्ति थे, जिन्होंने यमन तथा विकृत "म" वाले ठाठ का देशव्यापी प्रचार किया, जिसका प्रयोग भारतीय संगीत में पहले यदाकदा ही होता था। इसके उपरांत उन्हीं के प्रयत्नों से विकृत "रे" युक्त "साजगिरि" का चलन हुआ। संभव है, यह किसी देशी प्रकार का परिवर्तित रुप हो, जिसका प्रयोग शास्त्रीय संगीत में नही होता हो या "यमन" हीह्म का परिवर्तित रुप हो। अमीर खुसरो के दो नवीन रागों कीप खोज तथा विकृत "म" के चलन ने एक नवीन युग को आरंभ किया, जिसके परिणाम स्वरुप पंद्रहवीं और सोलहवीं शताब्दियों में कितने ही प्रचलित प्रमुख रागों के रुपों में परिवर्तन हुआ तथा नवीन राग - पद्धति आरंभ हुई।३ ऐसा प्रतीत होता है कि राजा मान तथा उनके दरबारी संगीतज्ञ और बाद में तानसेन इन नवीन राग - पद्धतियों के निर्माणकर्ता थे। इसी युग में विकृत "म" का शुद्ध "म" के स्थान पर खुलकर प्रयोग किया जाता था और "टोड़ी" को "वेराली" के रुप में तथा शुद्ध बसंत को मालववसंत के रुप में कर दिया गया था। इन विभिन्न परिवर्तनों को द्रष्टि में रखते हुए हमारे विचारानुसार किसी चतुर संगीतज्ञ ने मालव के विकृत "रे ध" को विकृत "रे म" में परिवर्तित कर दिया तथा इसे मारवा नाम दिया। यह बताना संभव नहीं कि इस परिवर्तन को करनेवाले कौन सज्जन थे, परंतु इस सब्का परिणाम यह हुआ कि मारवा ठाठ अस्तित्व में आ गया और विभिन्न राग; जैसे - वसंत, ललित, पंचम, जयंत आदि हमें प्राप्त हुए। पूरिया भी एक प्राचीन राग है, जिसका शास्त्रीय नाम पूर्वगौड़ था, जिससे पूर्वीया बना। "रागतरंगिणी" के समय में अर्थात् सत्तरहवीं शताब्दी में पूर्वीया यमन ठाठ का राग था। इससे मारवा की प्राचीनता सिद्ध होती है। परंतु भावभट्ट के युग में पूरिया साधारण और अत्यंत प्रचलित होता है। इसी कारण उस समय के संगीतज्ञों ने भी मारवा की अपेक्षा इसी को प्रधानता दी। इसी कारण मारवा में उस समय के प्रख्यात संगीतज्ञों ने अल्प मात्रा में रचनाएँ हीं। आज भी मारवा की अपेक्षा पूरिया ही लोकप्रिय है। दूसरे पूर्वगौड़ एक प्राचीन प्रकार था, जिसमें शुद्ध "ध म" और "रे" का प्रयोग हैं। यदि विकृत "रे ध" विकृत "रे म" तथा शुद्ध "ध" में परिवर्तित किए जा सकते, तो क्या कारण था कि "ध, म, रे" उतनी ही सुगमता से विकृत "रे म" में परिवर्तित नहीं किए गए, जबकि "रागतरंगिणी" में "म" का परिवर्तित रुप दिया हुआ था। यही कारण है, जिससे हमें विश्वास होता है कि पूरिया में मारवा से पहले परिवर्तन हुआ। साथ-साथ पूरिया में एक विशेष सुन्दरता विस्तार की संभावना तथा गहराई हैं।४ दिन के अंतिम प्रहर का राग होने कारण मारवा में "सा रे ग" का प्राधान्य होना चाहिए, किन्तु दुर्भाग्यवश हसमें "ग म ध" की प्राधनता रहती हैं; अत: इस असंबद्धता के कारण भी इस

ठाठ - राग स्वीकार नहीं करना चाहिए। इसके स्थान पर पूरिया का चुना जाना अधिक न्याय संगत होगा। माना कि दोनों षाडव राग हैं और इस कारण जनक राग के लिए अनुपयुक्त हैं, परंतु कठिनाई यह हैं कि इस ठाठ में कोई भी सात स्वरोंवाला एक साधारण राग नहीं हैं, जो कि इन दो रागों का स्थान ले सके। इन परिस्थितियों में हमें मारवा या पूरिया से ही संतुष्ट होना पड़ता हैं, जिनमें पंचम वर्ज्य है और इसलिए इसमें कभी प्रम की संभावना नहीं और हम सबही जानते है कि पूरिया के दो-तीन रुप है, अत: हमारे लिए यही श्रेयस्कर हैं कि हम मारवा को उसके पूर्व की भाँति जनक राग और ठाठ के स्थान पर आसीन रहने दें। कोमल ऋषभ, तीव्र मध्यम तथा अन्य शुद्ध स्वरोंवाले ठाठ को पं. भातखंडे जी ने मारवा नाम दिया हैं। इस मेल के अंतर्गत अनेक ऐसे राग भी आते हैं, जिनमें विविधता तथा सौदर्य की द्रष्टि से अन्य स्वरों का प्रयोग भी किया जाता है। राग-रागिनी वर्गीकरण के अनुसार इन्हें मुख्य राग हिंदोल की रागिनी तथा उपरागों के अंतर्गत भी सम्मिलित किया जा सकता है।५ मारवा ठाठ के राग करुण तथा श्रृंगार -रस की अभिव्यक्ति करते हैं, साथ ही सत्व के प्रादुर्भाव द्वारा आत्मोकर्ष में सहायक भी होते हैं। मनुष्य की आत्मा जब परमात्मा से तादत्म्य स्थापित करती है तो उसके फलस्वरुप करुण रस उद्भूत होता है, जबकि साधारण तादात्म्य का फल श्रृंगाररस होता है।

मारवा राग :

मारवा एक आधुनिक राग कहा जा सकता हैं। क्योंकि प्राचीन ग्रंथो में जहाँ कहीं भी इसका कुछ वर्णन मिलता है, वहाँ तीव्र मध्यम व तीव्र धैवत का प्रयोग नहीं बताया गया। अत: इससे यही अभिप्राय निकाल सकते है कि हमारा प्रचलित मारवा राग का स्वरुप नवीन हैं तथा यह लोकप्रिय भी हैं। इस राग में कोमल ऋषभ, शुद्ध धैवत तथा तीव्र मध्यम स्वरों का प्रयोग होता है तथा अन्य सब शुद्ध स्वर लगते हैं। पंचम स्वर बिलकुल वर्ज्य होने से इस राग की जाति षाडव-षाडव हैं। यह सायंकालीन संधिप्रकाश राग है। इस राग का चलन अधिकतर मध्य-सप्तक में ही खुलकर होता है। तार-सप्तक का प्रयोग बहुत ही सीमित होता है और मंद्र-सप्तक में जाने की कोई विशेष आवश्यकता नहीं रहती। राग के उत्तरांग में आरोह की तानोम में निषाद स्वर न लेकर "म ध सां" ऐसा किया हुआ द्रष्टिगोचर होता है। मध्य-सप्तक में ही राग की सब खूबी है, मंद्र निषाद का प्रयोग नि़ रे गम, धम गरे, गम, गरे सा - इस तरह से प्रचार में दिखाई देता हैं, परंतु मध्य-स्थान में निषाद अधिकतर छोड़ा हुआ ही दिखाई देता है। इस राग के अवरोह में ऋषभ का वक्रत्व मानना अधिक उचित होगा, क्योंकि अवरोह की तानों में ध, म गरे, ग म ध, म ग रे, म ग रे सा, ग, म ध, नि ध म गरे, ग म ग रे, ग रे, सा इस प्रकार बहुधा ऋषभ से ये तानें गांधार की ओर लौटती हुई दिखाई देती है, फिर यदि एकदम जाकर षड्ज से इस राग में न मिला जाए तो राग - सौंदर्य भी तो बढ़ता हैं - यही कारण है कि ऋषभ स्वर का वक्रत्व मानना ही अधिक न्याय संगत हैं। ऋषभ तक पहुँचकर पीछे घूमने का परिणाम कुछ विलक्षण ही होता है।६ मारवा राग में अधिकतर गायक व वादक मंद्र-सप्तक में स्वरविस्तार नहीं करते, क्योंकि ऐसा करने से राग-स्वरुप बदलने का भय रहता है। मंद्र-स्थान में अधिक तानें भी नहीं ली जातीं, बीच-बीच में रे नि़ ध़, म ध़ सा, रे ग, म ध म ग रे, गम गरे सा, ऐसा करेंगे, परंतु अधिक देर तक मंद्र-स्थान में विचरण नहीं करेंगे, क्योंकि उसमें विशेष विचित्रता नहीं हैं, और फिर राग का वातावरण बदलकर पूरिया का भास उत्पन्न होने का भय जो बना रहेगा। मारवा राग में मीड़ और नक्काशी का काम शोभायमान नहीं प्रतीत होता, क्योंकि यह चंचल प्रकृति का राग हैं और द्रुत गति में गाए जाने से ही अच्छा लगता हैं। इस राग में द्रुत गतें और छोटे खयाल अधिकतर गाए-बजाए जाते हैं। इस राग का गायन स्पष्ट और खड़े स्वरों का हैं। ध, म गरे, ग म गरे ये दो टुकड़े इस राग के जीवभूत अंग हैं, केवल इतने स्वरों को सुनकर ही मारवा राग शीघ्र ही स्पष्ट हो जाता है। मारवा राग गाते समय तार - षड्ज की ओर अधिक बार न जाया जाए तो अधिक अच्छा हैं, क्योंकि ऐसा करने से राग का सायंगेयत्व बिगड़ता हैं। तार-षड्ज स्वर तो रात्रि के अंतिम प्रहर में अधिक चमकता हैं, परंतु इसका यह अभिप्राय नहीं कि हम उसका प्रयोग बिलकूल भी नहीं कर सकते, जहाँ तक हो सके तार-सप्तक की ओर जाते हुए यदि हम नि रें नि ध, म ग रे इस प्रकार लें तो स्वरुप अधिक अच्छा लगेगा। इस राग में खड़े स्वरों के प्रयोग को देखकर कुछ लोगों का यह कहना है कि यह राग वीर-रस का उत्पादक हैं, परंतु इस विषय पर कोई उचित प्रमाण देना कठिन है - और केवल कल्पना के आधार पर नहीं कहा जा सकता कि इस राग-गायन के द्वारा कौन से रस की सृष्टि होती है। किसी स्वर-विशेष का प्रभाव कुछ प्राणी पर विशेष होगा, यह तो एक बहुत ही टेढ़ी समस्या हैं - अत: इस विषय के निर्णय के लिए सभी गुणीजनों को पूर्ण रुपेण स्वतंत्रता ही देना उचित है।७

संदर्भ

१. बी, विमलराय. एम / मारवा थाट अंक / पृ. ३२
२. बी, विमलराय. एम / मारवा थाट अंक / पृ. ३३
३. बी, विमलराय. एम / मारवा थाट अंक / पृ. ३४
४. बी, विमलराय. एम / मारवा थाट अंक / पृ. ३४
५. चौधरी, विरेन्द्र किशोर रोय / मारवा थाट अंक / पृ. ३७
६. सूरी, कुमारी उर्मिला / मारवा थाट अंक-१ / पृ. १३
७. सूरी, कुमारी उर्मिला / मारवा थाट अंक-१ / पृ. १५

संदर्भग्रंथ सूचि :

१. वसंत / संगीत विशारद / संगीत कार्यालय हाथरस प्रकाशन / बत्तीसवां संस्करण / ISBN ८१-८५५७-००-१
२. बी, विमलराय. एम / मारवा थाट अंक / संगीत कार्यालय - हाथरस प्रकाशन
३. सूरी, कुमारी उर्मिला / मारवा थाट अंक-१ / संपादक : लक्ष्मीनारायण गर्ग
४. राजन, रेणु / हिन्दुस्तानी संगीत में राग-लक्षण / राधा पब्लिकेशन / एडिशन - १९९६ / ISBN ८१७४८७०६५२
५. संगीत कार्यालय / एडिशन - १ जनवरी २०१५ / ASIN : B07DSBRK8C
६. गर्ग, प्रभुलाल / संगीत - मारवा थाट / संगीथ कार्यालय - हाथरस प्रकाशन / यु.पी.

❑❑❑

37

इतिहास के आइने में हर्षवर्द्धन का दिग्विजय

उषा कुमारी

प्रवीण कुमार
शोधार्थी, इतिहास विभाग,
विनोबा भावे विश्वविद्यालय हजारीबाग

****

भूमिका

हर्षवर्द्धन का जन्म ५९१ ईस्वी के लगभग हुआ। वह परमभट्टारकमहाराजाधिराज प्रभाकरवर्द्धन का कनिष्ठ पुत्र था तथा उसकी माता का नाम यशोमती था। दरबारी कवि बाण हर्ष के जन्म की घटना को अपेक्षाकृत अधिक महत्व देते है। उनके अनुसार यशोमती के गर्भ तथा हृदय के एक साथ ही हर्ष का उदय उसी प्रकार हुआ जिस प्रकार, देवी के गर्भ में चक्रपाणि का। अन्ततः ज्येष्ठ मास में कृष्ण पक्ष द्वादशी को हर्ष का जन्म हुआ था राजाज्योतिषी तारक के अनुसार ऐसा शुभ योग चक्रवर्ती सम्राट के ही जन्म के उपयुक्त था। हर्ष के जन्म पर सभी नगरों तथा ग्रामों में भारी उत्सव मनाये गये। बन्दी कारागार से मुक्त कर दिये गये, राजधानी में दुकाने लुटा दी गयी तथा नगर की सम्पूर्ण जनता ने नृत्य, संगीत, वाद्य आदि से बड़ा आन्नद मनाया।

विशिष्ट शब्द: महाधिराज, चक्रवर्ती, हर्षचरित, हुएनसांग, बाणभट्ट

हर्ष का बचपन उसके ममेरे भाई भण्डि तथा मालवराज महासेनगुप्त के दो पुत्रों—कुमारगुप्त और माधवगुप्त—के साथ व्यतीत हुआ। उसे राजकुमारों के अनुरूप शिक्षा—दीक्षा दी गयी। वह विविध शस्त्रों को चलाने में कुशल हो गया। हर्ष की सैनिक शिक्षा की ओर संकेत करते हुए बाण ने लिखा है—दिन प्रतिदिन